

गौतम बुद्ध

की प्रेरक जीवनी

शाक्य गणराज्य की सभा का आयोजन हो रहा था। राजधानी कपिलवस्तु में हो रही इस सभा की अध्यक्षता शाक्य संघ के मुखिया शुद्धोदन कर रहे थे। सभा समाप्ति की ओर बढ़ रही थी, तभी द्वार पर आए संदेशवाहक ने प्रवेश की आज्ञा माँगी। शुद्धोदन की स्वीकृति के बाद उसने अंदर प्रवेश किया। अंदर आकर दूत ने धीरे से शुद्धोदन को एक सूचना दी। दूत की सूचना पाकर शुद्धोदन का मुखकमल खिल उठा। उन्होंने शीघ्र ही शाक्य सभा को इस सुखद समाचार से अवगत कराया। सभा ने भी हर्ष-ध्वनि करके बधाई दी। समाचार ही कुछ ऐसा था। शुद्धोदन की रानी महामाया ने लुंबिनी वन में एक पुत्र को जन्म दिया था। गणराजा शुद्धोदन को यह आभास भी नहीं था कि रानी की यात्रा के क्रम में ही बालक का जन्म हो जाएगा, अन्यथा कपिलवस्तु से थोड़ी ही दूर स्थित लुंबिनी वन तक भी वह रानी को यात्रा की आज्ञा नहीं देते।

शाक्य मुखिया के पुत्र के जन्म का समाचार शाक्य गणराज्य में आग की तरह फैल गया। चारों तरफ बधाइयों और जश्न का माहौल था। राजा खुशी से फूले नहीं समा रहे थे। यद्यपि रानी महामाया का स्वास्थ्य कुछ ढीला था, लेकिन बालक के आगमन की खुशी में सब गौण हो गया था। हर्ष के अतिरेक में डूबे शुद्धोदन जश्न में मग्न थे, तभी द्वार पर ब्राह्मणों की टोली का पदार्पण हुआ। बच्चे को देख ब्राह्मणों ने भविष्यवाणी की—‘यह बालक आगे चलकर या तो चक्रवर्ती सम्राट् होगा या फिर संन्यासी।’

शुद्धोदन के घर पुत्र का जन्म 565 ई.पू. के आस-पास हुआ था। यह कालखंड भारतवर्ष के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण था। इस समय लोग अपनी वृत्ति का त्यागकर कृषि वृत्ति को अपनाने लगे थे। यह बदलाव केवल वृत्ति तक ही सीमित नहीं था। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पर भी बदलाव की बयार चल रही थी। प्राचीन राजतंत्रों के साथ ही भारत में गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली अस्तित्व में आ चुकी थी। पशुबलि, कर्मकांडों और बाह्य आडंबर से युक्त ब्राह्मण धर्म कहीं-न-कहीं कृषि कार्यों में बाधक बन रहा था। इसके अलावा विदेश यात्रा और सूदखोरी पर प्रतिबंध व्यापारी वर्ग को भी परेशान कर रहा था। बड़ी संख्या में पशुओं की बलि से कृषि के लिए पशुओं का अभाव हो रहा था। हवन-पूजन में भारी मात्रा में अनाज और अन्य सामग्री खर्च की जाती, जिसके चलते खाद्यान्न संकट उत्पन्न होने का खतरा था। इन स्थितियों में प्राचीन मान्यताओं में बदलाव अवश्यंभावी था। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों में बदलाव की सुगबुगाहट शुरू भी हो चुकी थी।

परिवर्तन की इसी लहर के बीच शाक्य संघ के मुखिया को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, परंतु शुद्धोदन इस खुशी को अधिक दिनों तक महसूस नहीं कर पाए। ब्राह्मणों की भविष्यवाणी सुन उनका हृदय आशंकाओं से काँप उठा। बालक यदि सम्राट् बना तो ठीक, लेकिन यदि दूसरी भविष्यवाणी सत्य हुई तो क्या होगा? वह चिंतित हो गए। इधर ब्राह्मणों की भविष्यवाणी से सशंकित शुद्धोदन को महामाया का गिरता हुआ स्वास्थ्य भी उद्वेलित कर रहा था। तमाम विशेषज्ञ वैद्यों की टोली भी उनकी हालत सुधारने में सफल नहीं हो सकी। अंत में पुत्रजन्म के सातवें दिन महामाया ने दुनिया को अलविदा कह दिया। मातृविहीन शिशु की पीड़ा उसकी अबोध आँखों से छलकने लगी। महामाया की मृत्यु के बाद शिशु का लालन-पालन उसकी मौसी महाप्रजापति 'गौतमी' करने लगी। बच्चे का नाम रखा गया सिद्धार्थ। गौतम गोत्र होने के कारण उसे सिद्धार्थ गौतम या फिर केवल 'गौतम' भी कहा जाने लगा।

शाक्य राजकुमारों की तरह बालक गौतम को भी हर तरह की शिक्षा प्रदान की गई। पुस्तकीय ज्ञान, घुड़सवारी, तलवारबाजी और युद्ध-कौशल में सिद्धार्थ शीघ्र ही पारंगत हो गए। सुंदर मुखाकृति, बलिष्ठ देहयष्टि और हर तरह के ज्ञान से युक्त एक राजकुमार की प्रसिद्धि



स्वाभाविक थी, परंतु गौतम तो कुछ और कारणों से चर्चित हो रहे थे। वैसे तो वह आम राजकुमारों के जैसे ही दिखते, परंतु उनके चेहरे पर बचपन का कोई भाव नहीं था। लड़ाई-झगड़ा, उछल-कूद और रूठने-मनाने जैसी प्रवृत्तियाँ उनमें नहीं थीं। चेहरे पर हमेशा सहज मौन और चिंतन का भाव रहता। प्रायः कोलाहल से दूर नदी के किनारे सघन वृक्षों की छाँव में चिंतन में बैठे रहते। शाक्य गणराज्य हिमालय की तराई में भारत-नेपाल की सीमा पर स्थित था। कल-कल बहती नदियों और सघन वृक्षों से आच्छादित यह गणराज्य प्रकृति की मनोरम छटा से युक्त था। बालक गौतम का जन्मस्थल लुंबिनी (यह स्थान अब नेपाल में पड़ता है और भारत-नेपाल सीमा से लगभग पाँच मील दूर है) भी सघन आम्रकुंजों से आच्छादित एक सुंदर और रमणीक स्थान था। बालक गौतम को महल के ऐश्वर्य से ज्यादा प्रकृति की वादियों का स्पर्श भाता। इधर सिद्धार्थ की विरक्ति को देखकर शुद्धोदन चिंतातुर हो जाते। उन्हें रह-रहकर ब्राह्मणों की भविष्यवाणी का स्मरण हो आता। उन्हें डर था कि कहीं सिद्धार्थ दूसरे रास्ते पर न चला जाए। इसी भय के वशीभूत होकर वह सिद्धार्थ के लिए भोग-विलास और ऐश्वर्य से युक्त एक नई दुनिया बसाने लगे। शुद्धोदन यह जान चुके थे कि बालक का हृदय कोमल है और वह दूसरों की पीड़ा से व्यथित हो जाता है, इसलिए उसको दुःख के माहौल से भरसक दूर रखने का प्रयास किया जाता। सिद्धार्थ के उपयोग के लिए ऋतुओं के अनुसार तीन अलग-अलग प्रकार के प्रासाद बनवाए गए। मनोरम उपवन के साथ ही गीत-संगीत और नृत्य से लेकर सुख-भोग के सारे साधन उपलब्ध कराए गए। कभी-कभी सुखों की अधिकता भी दुःखों को जन्म दे देती है। सिद्धार्थ के साथ भी ऐसा ही हुआ। शुद्धोदन बालक गौतम की विरक्ति और उदासीनता को दूर करने का जितना प्रयास करते, गौतम उतना ही विरक्त होते गए। महल का विलासितापूर्ण जीवन उनको रास नहीं आया। सांसारिक दुःखों की अनुभूति उन्हें बेचैन कर देती। भोग-विलास उनके मन में गहरी वितृष्णा का भाव भर देते। वह सोचते—‘क्या क्षणिक मनोरंजन से दुःखों पर स्थायी विजय हासिल की जा सकती है? यदि नहीं, तो दुःखों से मुक्ति का स्थायी मार्ग क्या है?’ अपार पीड़ा से व्यथित गौतम एक बार फिर एकांत में चले जाते।

एक बार सिद्धार्थ निर्जन एकांत में बैठे थे। तभी एक घायल हंस उनकी गोद में आ गिरा।



हंस को तड़पते देख उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने हंस को उठाया और उसका उपचार किया, इस बीच उनका चचेरा भाई देवदत्त वहाँ आ गया। वह हंस को लेने की जिद्द करने लगा, उसका कहना था कि हंस का शिकार उसने किया है, इसलिए वह उसका हुआ। हंस के प्राण संकट में जान गौतम ने उसे देने से इनकार कर दिया। दोनों में विवाद बढ़ गया। अंत में मामला शाक्य सभा तक गया। दोनों पक्षों की बात सुनने के बाद सभा ने तय किया कि हंस को छोड़ दिया जाए। वह जिसके पास जाएगा, वही उसका मालिक होगा। छूटने पर हंस दौड़कर सिद्धार्थ के पास चला गया। शाक्य सभा ने माना कि मारनेवाले से बचानेवाले का अधिकार अधिक होता है। सभा ने हंस गौतम को सौंप दिया।

उम्र बढ़ने के साथ ही सिद्धार्थ की दूसरों के प्रति करुणा और परोपकार की भावना बढ़ती गई। दुःख, दुःखों का कारण और इससे मुक्ति के उपाय—यही उनके चिंतन के मुख्य बिंदु थे। प्रकृति का शांत वातावरण और वृक्षों की सघन छाँव के नीचे बैठकर चिंतन-मनन करना उन्हें अच्छा लगता। एक दिन ध्यान की इसी मुद्रा के दौरान गौतम को विचित्र अनुभव हुआ। वह चेतना के अनोखे संसार में चले गए। कुछ क्षणों तक उन्हें लगा कि वह शरीर से अलग मात्र एक चेतनापुंज हैं। कुछ देर तक गौतम उसी अवस्था में रहे। उन्हें सहसा बोध हुआ। लगा कि सभी प्रकार के सुखों और दुःखों से परे चले जाना ही मुक्ति है। गौतम की संज्ञा लौटी तो उनका मन हलका हो चुका था। भीतर की सारी पीड़ा समाप्त हो चुकी थी।

जैसे-जैसे सिद्धार्थ की विरक्ति बढ़ती गई, वैसे-वैसे पिता शुद्धोदन की चिंताएँ भी बढ़ती गईं।

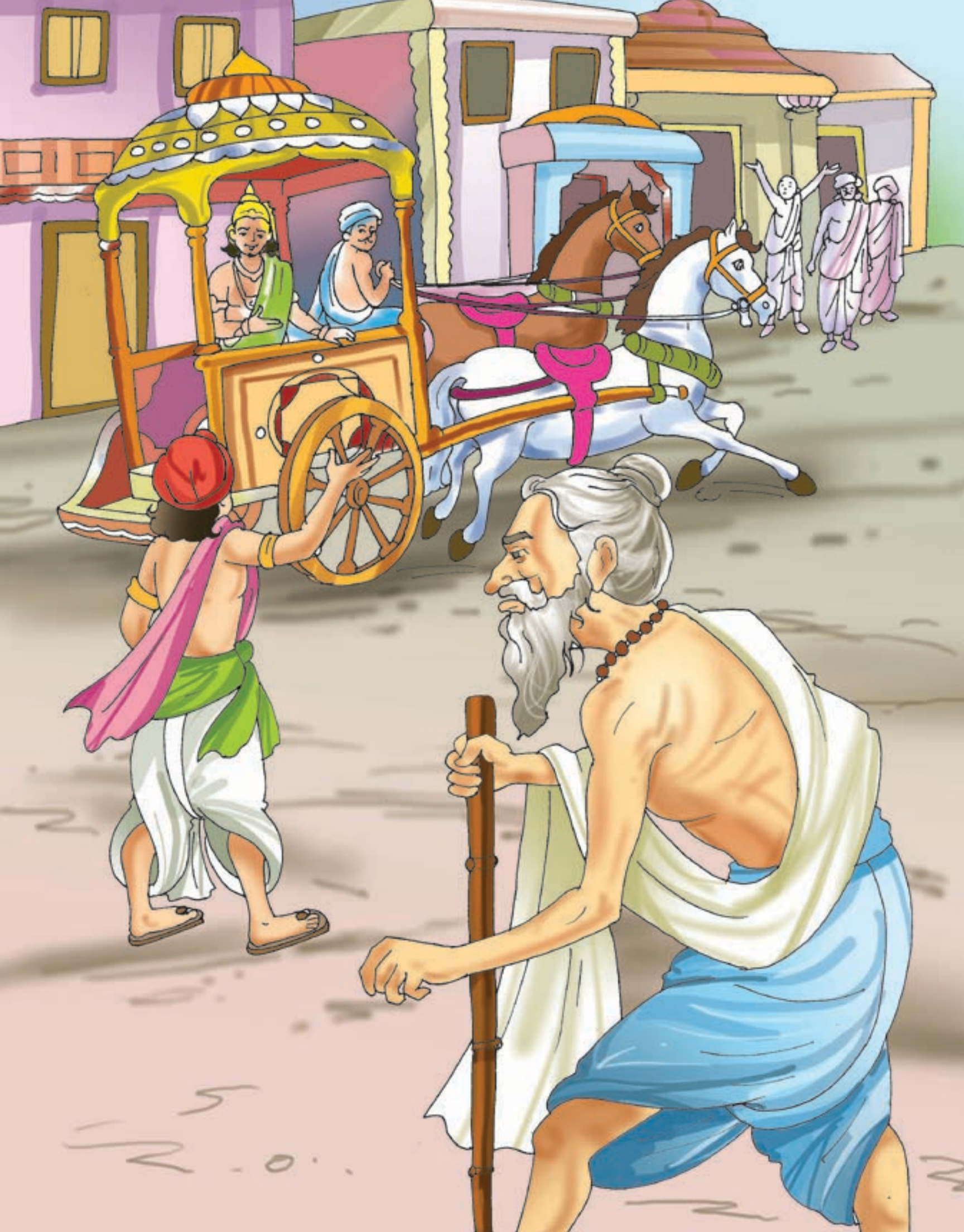
कोलिप जनपद में एक स्वयंवर का आयोजन हो रहा था। पिता शुद्धोदन ने सिद्धार्थ को भी स्वयंवर में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उस समय गौतम की आयु 16 वर्ष थी। अनेक धुरंधर योद्धाओं के बीच सिद्धार्थ ने अच्युत लक्ष्य भेदन किया। अनेक को मल्लयुद्ध में परास्त किया और आखिरकार कोलिप वंश की सबसे सुंदर और गुणी राजकुमारी यशोधरा को स्वयंवर में जीत लिया। गौतम का विवाह यशोधरा से हो गया।

विवाह के पश्चात् गौतम में वैराग्य की भावना खत्म तो नहीं हुई, लेकिन कुछ मद्धिम



जरूर पड़ी। यशोधरा (अन्य नाम गोपा, भद्रा, कपिलायिनी) के साथ जीवन प्रसन्नतापूर्वक बीतने लगा। गौतम अब भी कभी-कभी ध्यानमग्न होते, परंतु आसक्ति पूर्णतया विरक्ति में नहीं बदल पाती। इस बीच यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र के आगमन से गौतम को हर्ष तो हुआ, परंतु उन्हें यह एहसास भी हो गया कि पत्नी के साथ ही अब पुत्र भी उन्हें सांसारिक मोहपाश में जकड़ लेगा। उन्होंने उसे 'राहु' कहा। फिर पुत्र का नाम पड़ा 'राहुल' अर्थात् बंधन।

समय अपनी गति से आगे बढ़ रहा था। गौतम अब उनतीस वर्ष के हो चुके थे। इस दौरान अलग-अलग घटित कुछ घटनाओं ने उनकी व्यथा को एक बार फिर बढ़ा दिया था। एक दिन नगर-भ्रमण के दौरान सिद्धार्थ को एक अत्यंत वृद्ध व्यक्ति दिखाई दिया। दुबला-पतला झुकी हुई कमर, शिथिल ज्ञानेंद्रियों से युक्त, अस्थिपंजर काया देख बुद्ध काँप उठे। उन्होंने वृद्धों को देखा था, परंतु इस तरह के कृशकाय अस्थिपंजर से उनका सामना नहीं हुआ था। बुढ़ापा एक अच्छे-भले व्यक्ति को भी इतना दुर्बल बना देता है। गौतम व्यथित हो उठे। नगर-यात्रा के क्रम में ही सिद्धार्थ ने एक दिन व्याधियों से युक्त बीमार, असह्य यंत्रणा झेलनेवाले व्यक्ति को देखा। अंत में उन्होंने एक मृत व्यक्ति की शवयात्रा और उसके पीछे बिलखते परिजनों की पीड़ा देखी। पत्नी और पुत्र के आगमन के बाद कुछ हद तक मोह बंधन में जा चुके सिद्धार्थ का वैराग्य भाव एक बार फिर जाग्रत् हो गया। गौतम की सांसारिक दुःखों के प्रति चिंता शुद्धोदन को भयाक्रांत कर देती। इसी कारण बचपन से उनको हर वैसे माहौल से दूर रखने का प्रयास किया गया, जो उनको दुःख देता हो। शुद्धोदन का यह प्रयास ही बुद्ध के वैराग्य का प्रमुख कारण बना। बंद चहारदिवारी में भोग-विलास के साधनों ने उसके मन को और कोमल बना दिया। अचानक घटी इन घटनाओं ने सिद्धार्थ को सोचने पर विवश कर दिया। मनुष्य जब वृद्ध हो जाता है, रोगग्रस्त होता है और अंततः इस शरीर को छोड़ देता है तो फिर मनुष्य की लिप्सा क्यों? गौतम की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। इसी बीच उन्होंने हर तरह के सुख-दुःख से रहित एक संन्यासी को देखा, जो निर्भय होकर आनंद भाव से विचरण कर रहा था। बुद्ध का संन्यास भाव और प्रगाढ़ हो गया।



इस बीच सिद्धार्थ को सांसारिक मोह-माया में रमाने के पिता शुद्धोदन के प्रयास जारी थे। एक रात्रि महल में नृत्य का आयोजन चल रहा था। नृत्य के दौरान गौतम को नींद आ गई। जब उनकी आँख खुली तो उन्होंने देखा, जो नृत्यांगनाएँ साज-शृंगार कर नृत्य करती हुई स्वर्ग से उतरी अप्सराएँ लग रही थीं, सोते वक्त उनका चेहरा बेहद म्लान हो गया था। बाहरी सौंदर्य प्रसाधनों ने उनकी कांति हर ली थी। अस्त-व्यस्त फैले वस्त्रों, बिखरे हुए बालों ने उन्हें विद्रूप बना दिया था। सिद्धार्थ का हृदय वितृष्णा से भर गया। उनकी संसार-त्याग की भावना और प्रबल हो गई। दृढ़ निश्चय कर वह अपने कक्ष में पहुँचे। आधी रात के समय उन्होंने एक बार सोती हुई पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को देखा। एक क्षण के लिए उनका हृदय मोह के वश में आया, लेकिन तत्काल उन्होंने पत्नी और पुत्र के मोहपाश से स्वयं को अलग किया और वन को प्रस्थान कर गए। वन जाते समय गौतम की आयु उनतीस वर्ष थी। सिद्धार्थ के गृहत्याग की घटना 'महाभिनिष्क्रमण' कहलाती है।

संन्यास ग्रहण के पश्चात् सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में भटकते रहे। वे अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम में गए। इनमें रुद्रक, रामपुत्र और आलार कलाम प्रमुख थे। गौतम ने ज्ञान-प्राप्ति के लिए कठिन साधना की। उन्होंने अनेक प्रकार के कठिन व्रत, जप और तप किए, परंतु उनका मन शांत नहीं हुआ। उन्हें लगा कि स्वयं को पीड़ा देकर मोक्ष प्राप्ति की कामना करना भी एक प्रकार की लालसा है। उन्होंने सोचा, यदि स्वयं को हर प्रकार के सुखों से वंचित करना ही धर्म है तो फिर स्वर्ग का सुख पाने की अभिलाषा क्यों? यह भी तो एक प्रकार की लिप्सा है! गौतम यह समझ चुके थे कि लालसा के रहते दुःखों से मुक्ति संभव नहीं। गौतम इच्छाओं के बलात् दमन के पक्ष में नहीं थे। वह दमन और निषेध नहीं, शमन और उन्नयन चाहते थे। वह अंधा हठ नहीं, संज्ञान चाहते थे। उन्हें स्वर्ग का भोग नहीं, धरती पर शक्ति चाहिए थी। एक ऐसा मार्ग चाहिए था, जहाँ स्वयं के साथ-साथ लोक की मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त हो सके।

कपिलवस्तु से विंध्याचल होते हुए गौतम उरुवेला पहुँचे, जहाँ उन्हें कौंडिन्य आदि पाँच ब्राह्मण मिले। इनके साथ सिद्धार्थ ने घोर तपस्या प्रारंभ की। गौतम सूखकर कंकाल बन गए, परंतु ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। गौतम समझ गए कि आत्मपीड़ा भी एक प्रकार से दुःख का वरण है



और दुःख के रहते मुक्ति संभव नहीं। अंत में उन्होंने सुजाता नाम की एक कृषक कन्या के हाथों भोजन ग्रहण कर अपना व्रत तोड़ दिया। तपस्या भंग करने से नाराज पाँच ब्राह्मणों ने उनका साथ छोड़ दिया। गौतम गया आ गए। उन्हें अचानक बचपन में लगाए गए उस ध्यान का स्मरण हुआ, जिसमें कुछ क्षणों के लिए उन्हें बोधि प्राप्त हुई थी। सिद्धार्थ यह समझ चुके थे कि भूख पर नियंत्रण जरूरी है, लेकिन भोजन का त्याग करके नहीं, बल्कि भूख का शमन करके। वे भूख की गुलामी नहीं चाहते थे।

गौतम ने ज्ञान-प्राप्ति के दृढ़ निश्चय के साथ गया में पीपल के वृक्ष के नीचे समाधि लगाई। कई दिनों के ध्यान के पश्चात् आठवें दिन उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। दुःख शाश्वत है और उसका कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। दुःख के उस स्रोत का अंत करने के लिए जीवन से भागना जरूरी नहीं, बल्कि अपना दैनिक कर्म करते हुए लालसाओं का शमन करना ही मुक्ति है। गौतम के ज्ञान-प्राप्ति की घटना को 'संबोधि' कहते हैं। ज्ञान मिलने के बाद गौतम 'बुद्ध' कहलाने लगे।

ज्ञान मिलने के बाद गौतम बुद्ध सारनाथ पहुँचे। जहाँ उन्हें उरुवेला में छूटे हुए ब्राह्मण मिले। उन्हीं लोगों को बुद्ध ने पहला उपदेश दिया। यह घटना 'धर्मचक्र प्रवर्तन' कहलाती है। प्रथम उपदेश के बाद बुद्ध ने 'बौद्ध संघ' की स्थापना की। यहीं से श्रमण परंपरा की शुरुआत हुई। पाँच ब्राह्मणों के अलावा बनारस के यश नामक श्रेष्ठी और उनके वैश्यों ने बौद्ध पंथ को स्वीकार कर लिया। बुद्ध ने संघ के सदस्यों को विभिन्न क्षेत्रों में जाकर धर्म प्रचार करने को कहा।

गौतम बुद्ध ने एक ऐसे मध्यमार्गी पंथ की स्थापना की, जो सरल, ग्राह्य और बाह्य आडंबर से रहित था। गृहस्थों और भिक्षुओं के लिए उन्होंने अलग-अलग नियम निर्धारित किए। बुद्ध मानते थे कि वेद असंदिग्ध नहीं हैं। वह मूर्तिपूजा और चमत्कार के विरोधी थे। उनके जीवनकाल में केवल दो बार विवशता में चमत्कार करने का उल्लेख है। हालाँकि वह अन्य मामलों में इसका विरोध करते रहे। धर्म-प्रचार के क्रम में बुद्ध को एक महिला मिली, जिसका जवान बेटा मर गया था। उसने महात्मा बुद्ध से कहा कि वे उसके मरे हुए बेटे को जिंदा



कर दें। बुद्ध के बार-बार समझाने पर भी जब वह नहीं मानी तो उन्होंने कहा, “मैं तुम्हारे बेटे को जीवित कर दूँगा, लेकिन उसके लिए तुम्हें ऐसे घर से सरसों के दाने लाने होंगे, जहाँ कभी कोई मरा न हो।” महिला पूरा गाँव घूम आई, ऐसा कोई घर नहीं मिला। बुद्ध ने कहा, “जीवन और मृत्यु शाश्वत हैं, उनको रोकना संभव नहीं।” महिला समझ चुकी थी। वह उनके पैरों पर गिर पड़ी।

गौतम बुद्ध ने कर्म से संन्यास लेने की वकालत नहीं की, बल्कि कर्म में संन्यास का पक्ष लिया, यानी लालसाओं के त्याग और निर्वाण के लिए जीवन से भागने की आवश्यकता नहीं, बल्कि जीवन में रहकर स्वयं की लालसाओं पर नियंत्रण पाना ही धर्म है। सुख-दुःख पर विजय प्राप्त करने के बाद जो प्रेम और करुणा उत्पन्न होगी, वह स्वयं के लिए न होकर विश्वव्यापी होगी। अभाव में भी आनंद मनाना, सुख-दुःख और संबंधों का लोभ छोड़ देना ही धर्म है। बुद्ध ने इसके लिए पाँच अनुशासन बताए—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह। झूठ के मार्ग पर चलना, दूसरों को पीड़ा पहुँचाना, आवश्यकता से अधिक धन-संग्रह करना, भोग-विलास में लिप्त रहना जैसे कारणों को उन्होंने दुःख की जड़ माना। बुद्ध के अनुसार धर्म वह है, जो मानव जीवन को ऊपर उठाता है, उज्ज्वल बनाता है और समाज का उत्थान करता है। गौतम बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म के जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया और पशुबलि से असहमति जताई। बौद्ध संघ में शूद्रों और स्त्रियों को प्रवेश देकर उन्होंने अपने समतावादी दृष्टिकोण को प्रदर्शित किया। बुद्ध के अनुसार कर्म ही मनुष्य को ऊपर उठाता है। बुद्ध यह मानते थे कि आत्मा चेतना है और शरीर के रहने पर ही आत्मा का अस्तित्व है। वे ये भी जानते थे कि कर्म के बिना आत्मा शुद्ध और स्वाद की गुलामी छोड़नी होगी। आवश्यकताओं का शमन कर आत्मा की चेतना को जगाया जा सकता है।

आम लोगों के जीवन को सहज बनानेवाला बौद्ध धर्म दिनोदिन लोकप्रिय होने लगा। मगध के शासक बिंबसार, अजातशत्रु, कोशल नरेश प्रसेनजित् के अलावा राजगृह के संजय नामक परिव्राजक, आचार्य के दो शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन, वैशाली की नगरवधू आम्रपाली बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में थे। बुद्ध के पिता शुद्धोदन, मौसी महाप्रजापति गौतमी, पत्नी



यशोधरा, पुत्र राहुल के बाद उनके कट्टर विरोधी भाई देवदत्त ने भी बौद्ध धर्म को अपना लिया। अंत में शाक्य संघ के मुखिया गणराजा भद्रिक उनके सहयोगी आनंद, अनिरुद्ध तथा उपालि ने बौद्ध पंथ को अपनाया।

बुद्ध के बताए गए रास्ते तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के अनुकूल थे। अहिंसा का सिद्धांत जहाँ पशुबलि का निषेध कर कृषि वृत्ति में सहायक हो रहा था, वहीं युद्ध की विभीषिका का भी शमन करता था। शक्ति काल की अवस्था न केवल व्यापार अपितु समाज के चहुँमुखी विकास को बढ़ावा देती थी।

बुद्ध के जीवन और उनकी शिक्षाओं के बारे में 'पाली त्रिपिटक' में विस्तार से जानकारी मिलती है। ज्ञान मिलने के बाद गौतम बुद्ध उत्तर प्रदेश तथा बिहार के विभिन्न जनपदों में घूम-घूमकर बौद्ध धर्म का प्रचार करते रहे। उनकी दिनचर्या एकांत ध्यान तथा जनता को उपदेश देने में बीतती थी। उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर लोगों का उनकी शरण में आने का क्रम जारी था।

अस्सी वर्ष की आयु में बुद्ध वैशाली के भंडग्राम होते हुए भोगनगर और तत्पश्चात् पावा पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने चुंद नामक सुनार के घर भोजन किया। भोजन के बाद उन्हें रक्त-अतिसार हो गया। यंत्रणा के बावजूद बुद्ध ने उसी हालत में कुशीनगर प्रस्थान किया। कुशीनगर पहुँचते-पहुँचते बुद्ध की हालत खराब हो गई। उनका अंतिम समय आ चुका था। दो शाल वृक्षों के बीच वे लेट गए। अपने शिष्य सुभद्र से उन्होंने कहा, “वयधम्मा संवरं अप्पमादेन संपायेदा।” यह कहकर बुद्ध ‘महापरिनिर्वाण’ में चले गए। रुग्ण होने पर अपने प्रिय शिष्य आनंद की जिज्ञासा का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था—“आनंद, मैंने जो धर्म और विनय के उपदेश दिए हैं, मेरे बाद वे ही तुम्हारे शास्त्र होंगे।”

महात्मा बुद्ध के संसार त्यागने के बाद भी उनके शिष्यों ने बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार जारी रखा। भारत ही नहीं, विश्व के कई देशों ने बौद्ध धर्म को अपनाया। यद्यपि कालांतर में इसमें कुछ विकृतियाँ आईं और यह अपने उस मूल स्वरूप में कायम नहीं रह पाया, जिस रूप में बुद्ध ने कल्पना की थी।

